भगवान श्री चन्द्र

चेतहु नगरी तारहु गाँव ।
अलख पुरुष का सिमरहुँ नाँव ।।

भारतीय जीवन को वैदिक मर्यादा से सम्पन्न कर सनातन धर्म का गौरव बढ़ाने वाले भगवान श्री चन्द्र ने आचार्य शंकर की तरह भारतीय संस्कृति और अध्यात्म का संरक्षण किया। वे परम उदासी, असाधारण वैरागी और भगवान के विलक्षण अनुरागी थे। उन्होंने जीवनमात्र को संसार रूपी सागर से पार उतारने के लिए सुगम तथा आचारमूलक भक्ति का पथ प्रशस्त किया। वे जन्मजात योगी थे। उन्होंने ज्ञान योग की साधना की। वे एक महान उच्च कोटि के कवि, धुरंदर विद्वान, दार्शनिक तथा निडर क्रान्तिकारी थे। वे दीन दुखियों तथा गरीबों के सहायक, अमानवता और अत्याचार, ऊँच-नीच, छुआछूत तथा धार्मिक आडम्बरों के कट्टर विरोधी थे। वे अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध चट्टान की तरह खड़े हो जाते थे। वे बड़े से बड़े शासकों से भी नहीं डरते थे अपितु उनका डटकर मुकाबला करते थे।

महात्मा श्रीचन्द्र गुरु नानक देव के पुत्र थे। इनका जन्म सम्वत् १५५१ वि. में भाद्रपद शुक्ल नवमी को तलवण्डी ग्राम में हुआ था। उन्होंने इतिहास प्रसिद्ध परम पवित्र कुल को धन्य किया था। उनकी माता सुलक्षणी देवी थी। उस समय गुरु नानक देव जी ३२ साल के थे। उनकी बहिन नानकी ने सूचना दी कि अमित तेजस्वी बालक ने जन्म लिया है। पहले तो उनकी माँ ने जटा भस्मादि से अलंकृत शिव रूप में देखा पर प्रार्थना करने पर वे साधारण शिशु हो गए। गुरु नानक देव जी दिव्य शिशु के जन्म से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने तत्क्षण समझ लिया कि चन्द्रमा की तरह विश्व का अज्ञान अन्धकार मिटाने के लिए किसी दिव्य आत्मा ने जन्म लिया है। उन्होंने इसका नाम श्रीचन्द्र रखा।

चार साल बाद गुरु नानक देव जी अपने दूसरे पुत्र लक्ष्मी चन्द्र के जन्म के बाद संन्यासी वेश में घर से बाहर निकल गए। श्रीचन्द्र पिता के वैराग्य संस्कार से बचपन से ही प्रभावित होने लगे। वे अन्य लड़कों से बहुत कम मिलते थे। दूर से ही निर्लिप्त भाव से उनके खेल देखा करते थे। एकान्त स्थान में उनका मन बहुत लगता था। घर में लोगों को विश्वास हो गया था कि श्रीचन्द्र भी पिता की तरह संन्यास ले लेंगे। इसलिए घर के लोग उनके प्रति विशेष सावधान रहने लगे। एक दिन विचित्र बात हुई श्रीचन्द्र हाथ में थोड़े से चने लेकर भिक्षुक को देने घर से बाहर आए, भिक्षु के पात्र में चने के स्थान पर मोती देखकर आश्चर्य चकित हो गए। श्रीचन्द्र का अधिक समय एकान्त में बीतता था। वे लोगों से सुना करते थे कि पिता नानक बचपन में इधर-उधर घूमा करते थे। वे गाँव से थोड़ी दूर पर एक वन में चले गए। दोप्हर तक घर न लौटने पर लोग आशंकित हुए, खोज आरंभ हो गई। वन में प्रवेश करने पर लोगों ने श्री चन्द्र को एक पेड़ के नीचे बैठा पाया। उस वन में एक भयानक सिंह रहता था। लोगों ने देखा कि सिंह श्रीचन्द्र के सामने शान्त भाव से बैठा है और वे समाधिस्थ हैं। एक काला नाग उनके गले में लिपटा हुआ है। तलवण्डी के शासक रायबुलार घटनास्थल पर उपस्थित थे। श्री चन्द्र के दर्शन से वे बहुत प्रभावित हुए। दूर-दूर से लोग श्रीचन्द्र का दर्शन करने आने लगे।

कुछ दिनों के लिए श्रीचन्द्र अपने नाना के घर चले गए। उनके छोटे भाई लक्ष्मी चन्द्र भी साथ थे। एक दिन वे वन में गए, रात को दोनों भाई वन में ही रह गए। उनकी माता सुलक्षणी को चिन्ता होने लगी। उनके न लौटने पर लोग खोज पर निकल पड़े। सौभाग्य से प्रसिद्ध उदासीन महात्मा अविनाशी मुनि का उनको दर्शन हुआ। मुनि ने सांत्वना दी कि बालक शीघ्र ही घर आ जायेंगे। मुनि के आशीर्वाद से वे घर आ गए। उस समय श्रीचन्द्र आठ साल के थे। वे अपने भाई के साथ अपने घर तलवण्डी चले आये। तब वे ११ साल के थे। यथासमय उपनयन संस्कार सम्पन्न होने पर विवाह की बात

चलने लगी। पर वे तो जन्मजात संन्यासी थे। इसलिए विवाह की बात आगे न बढ़ सकी। श्रीचन्द्र विद्याध्ययन के लिए काश्मीर गए। वहाँ वे समस्त शास्त्रों में पारंगत हो गए। लोग उनकी कुशाग्र बुद्धि से बहुत प्रभावित हुए। चौदह साल की अवस्था में ही उन्होंने सारे शास्त्र पढ़ डाले। काशी के दिग्विजयी पंडित सोमनाथ को शास्त्रार्थ में गहरी पराजय दी। धीरे-धीरे उनमें वैराग्य का भाव प्रबल होने लगा। घर और परिवार के प्रति आसक्ति तो थी नहीं इसलिए मन में निर्मल वैराग्य का उदय हुआ।

श्री अविनाशी मुनि जी से उन्होंने दीक्षा ली, वे उस समय अमरनाथ की यात्रा के लिए जा रहे थे। दीक्षित होने के बाद ही गुरु के आदेश से धर्म के प्रचार के लिए उन्होंने भरतखण्ड के प्रसिद्ध तीर्थों और धर्म क्षेत्रों की यात्रा की। वे ब्रज, काशी और प्रयाग भी गए थे। जगन्नाथ पुरी में उन्होंने दिग्विजय पं० सोमनाथ त्रिपाठी को शिष्य रूप में स्वीकार कर उनका नाम सोमदेव रखा। वे करतारपुर भी गए थे। गाँव के बाहर ही उन्होंने आसन लगाया (उनके पिता गुरु नानक) उस समय करतारपुर में ही थे। श्री गुरु नानक देव जी ने उनको संन्यासी और महात्मा के रूप में देखकर परम आनन्द अनुभव किया। वे करतारपुर से काश्मीर चले आए। इस प्रकार उन्होंने देश में धार्मिक और आध्यात्मिक संगठन सुदृढ़ किया। काश्मीर में श्रीचन्द्र ने सात साल तक निवास कर श्रीमद्भागवद् गीता, ब्रह्मसूत्र आदि पर विद्वत्तापूर्ण भाष्य लिखे पर वे अप्राप्य हैं। उन्होंने पेशावर में भी धर्म प्रचार किया। काबुल गए। लोग उनके यौगिक चमत्कारों से आकृष्ट होकर उनके दर्शन के लिए आने लगे। वजरखान नामक एक मुसलमान उनकी सीख से प्रभावित होकर राम कृष्ण का नाम लेकर करताल बजा बजाकर काबुल की गलियों में घूमने लगा। मुसलमानों ने उसे काफिर घोषित कर दण्ड देना चाहा पर वे सामने आने पर अन्धे हो गए। वे अपनी करनी पर पछताने लगे। महात्मा श्रीचन्द्र ने कहा कि क्षमा याचना करने पर वह देखने लगेंगे। वजीर खान ने क्षमा दान दिया। लोग अधिकाधिक संख्या में इस घटना से प्रभावित होकर

श्रीचन्द्र का दर्शन करने के लिए कुटी में आने लगे और उनके शिष्य हो गए। कन्दहार में कामरान से भी महात्मा श्रीचन्द्र की भेंट हुई थी। पेशावर होते हुए वे बारठ आए। बारठ से हरिद्वार और हरिद्वार से सिन्ध गए। गुजरात होते हुए श्री चन्द्र जी आबू पर्वत पर गए। वहाँ उन्होंने अपने गुरु के गुरु श्री वेदमुनि जी का दर्शन किया। उन्होंने मेवाड़ के कुल देवता भगवान एकलिंग का भी दर्शन किया।

महात्मा श्रीचन्द्र संसार के प्रति पूर्ण अनासक्त उदासीन थे। उन्होंने अपनी चित्तावृत्ति ब्रह्म प्राप्ति में लीन कर सनातन धर्म को अभय किया। उन्होंने उदासीन संप्रदाय में किसी प्रकार के द्वेष, वैमनस्य या संघर्ष का उदय नहीं होने दिया, पंचदेव की उपासना प्रचलित की। अपने-अपने इष्ट देव की उपासना के लिए उदासीपंथ के लोग उनकी कृपा से स्वतन्त्र हैं। श्रीचन्द्र ने पंचदेवोपासना में एक ही परमात्मा की भक्ति अथवा निष्ठा प्राप्त की। उन्होंने इस प्रकार आध्यात्मिक क्रान्ति का सृजन किया। उन्होंने कहा –

'निराशा मठ निरन्तर ध्यान
निर्भव नगरी दीपक गुरु ज्ञान।'

निराशा ही हमारा मठ है। अभय और अलौकिक ब्रह्म नगर में हमारा निवास है। हमारे मठ में निरन्तर गुरुज्ञान रूपी अखण्ड दीपक जलता रहता है। मुक्ति अनुभव करना हमारा सहज स्वभाव है। महात्मा श्रीचन्द्र ने आचार व निष्ठा पर विशेष बल दिया। गुरु मंत्र और हरि के नाम को उन्होंने मध्यकालीन उदासीन सम्प्रदाय का प्राण स्वीकार किया। श्रीचन्द्र ने वेद शास्त्र सम्मत कल्याण मार्ग का उपदेश दिया। ज्ञान, क्षमा, संयम, शील और काल मोक्ष अपनाने के लिए उन्होंने अपने अनुयायियों को प्रोत्साहित किया। वे आचार्य शंकर के नवीन संस्करण थे। उन्होंने सारे शास्त्रों का मन्थन कर युगधर्म का स्वरूप निश्चित किया। वे जगत् गुरु थे। उन्होंने

भवरोग से पीड़ित जीवमात्र के लिए आत्मज्ञान का रसायन प्रस्तुत किया। जीवात्मा को अभयपद प्रदान किया। अपनी ज्ञान की धूनी में सुखदुख जलाकर श्रीचन्द्र ने त्रिगुणात्मक प्रकृति से परे परम निर्मल भगवत रस का आस्वादन किया। उनका मात्राशास्त्र जन्म मरण के बन्धन से जीव को मुक्त करने का परम साधन है। मात्राशास्त्र के अन्त में श्रीचन्द्र की उक्ति है -

नानकपूता श्रीचन्द्र बोले।
जुगत पछाने तत्व विरोले।।
ऐसी मात्रा ले पहिरै कोए।
आवागमन मिटावै सोय।।

वे पूरे तत्वज्ञ महात्मा थे। बादशाह जहाँगीर श्रीचन्द्र से बहुत प्रभावित था। उसने उनको लाहौर आने का निमन्त्रण दिया और स्वयं उनका दर्शन करने उनके स्थान पर भी गया था। उनके निमन्त्रण पर वे लाहौर गए। जनता और जहाँगीर दोनों ने उनका स्वागत किया। उस समय एक विचित्र घटना हुई। राजसभा में उपस्थित होने पर उनकी गूदड़ी थर-थर

काँपने लगी। जहांगीर ने कारण पूछा तो गुदड़ी शान्त हो गई और बादशाह का मुख सूख गया, वह थर-थर काँपने लगा। महात्मा श्रीचन्द्र ने कहा कि राजसभा में प्रवेश करने के पहले मुझे ज्वर आने वाला था, मैंने उसे गुदड़ी में छिपा दिया था। लोग उनकी सिद्धि से चकित रह गए।

आचार्य श्रीचन्द्र जी ने अपना सारा जीवन देश प्रेम, देश जाति तथा वतन की मर्यादा की रक्षा के लिए अर्पित कर दिया। उनकी देश भक्ति का परिचय इस महत्वपूर्ण घटना से ही प्राप्त होता है। जब छत्रपति शिवाजी मराठा के गुरु समर्थ स्वामी रामदास जी की भेंट आपके साथ हुई तो भगवान श्रीचन्द्र जी ने यह उपदेश दिया कि रामदास एकान्त में योग साधना और पूजा पाठ करने की बजाय तीर्थ यात्रा करके अपने धर्मस्थानों की दुर्गत की तरफ भी ध्यान दो। कोई ऐसा शिष्य तैयार करो जो कि इस दुर्गत में से देश को निकाल सके। इन्हीं वचनों से प्रेरणा लेकर श्री रामदास जी ने शिवाजी मराठा जैसा शिष्य बनाया जिसने न केवल मुगल साम्राज्य की जड़ें हिलाकर रख दी वरन् उन पर अपना अधिकार भी जमा लिया जो उनके जीवन काल तक बना रहा। दूसरा भगवान श्रीचन्द्र जी महाराज की देशभक्ति तथा देश सेवा का परिचय महाराणा प्रताप के आप के साथ हुए ऐतिहासिक मिलाप के साथ होता है। महाराणा उदय सिंह की मृत्यु के पश्चात् वि० सम्वत १६२९ (सन् १५७२ ई.) के महाराणा प्रताप उदयपुर के सिंहासन पर विराजमान हुए। चितौड़ पहले से ही मुगलों ने सन् १५६८ ई. में उसके पिता उदय सिंह से हथिया लिया था। अनेक राजपूत सरदारों ने मुगल सम्राट अकबर की ईन मान ली थी। पर वह दिलेर, वीर, धीर, स्वाभिमानी लौहपुरुष ने हिम्मत नहीं हारी और सौगन्ध खाई थी कि मैं जब तक चितौड़ वापिस नहीं लूँगा तब तक धरती पर नहीं सोऊँगा, पत्तों का ही भोजन करुँगा, मूंछें नीची नहीं रखूँगा।

राणा प्रताप के साथ सबसे बड़ी विडम्बना यह थी कि उसके अपने भाई ही दुश्मनों के साथ मिले हुए थे। यही कारण था कि सन् १५७६ में हल्दी घाटी की लड़ाई में राणा प्रताप को हार का मुँह देखना पड़ा। २० वर्ष तक कठिन तपस्याओं का सामना करना पड़ा। इन्हीं दिनों श्रीचन्द्र जी महाराज भी आबू पर्वत से एकलिंग की तीर्थ यात्रा करने के लिए यहाँ पधारे हुए थे। अपने मंत्री भामाशाह के कहने पर महाराणा प्रताप एक दिन भगवान श्रीचन्द्र जी के दर्शनों के लिए आए तथा अपनी सारी राम कहानी उनके सामने वर्णन की। भगवान श्रीचन्द्र ने बड़े ध्यान से उनकी दास्तान सुनकर कहा - अभी कुछ नहीं बिगड़ा, वह दिन दूर नहीं जब एक दिन फिर आपका अधिकार होगा। 'वीर पुरुष अपने जीवन में एक ही बार मरता है। कायर व्यक्ति मृत्यु से पहले ही जीवन में कई बार मरते हैं। शूरवीर कभी निराश नहीं होते।' भामाशाह जो पास ही बैठा भगवान श्री चन्द्र जी का वार्तालाप सुन रहा था अत्यन्त प्रभावित हुआ और उसने अपना सारा धन राणा प्रताप को सौंप दिया। राणा प्रताप के ऊपर भगवान श्रीचन्द्र जी के आशीर्वाद एवं भामाशाह के द्वारा दिए गए धन से कुछ ऐसा चमत्कार हुआ कि उन्होंने चितौड़ मंगलगढ़ के कुछ किलों को छोड़कर बाकि सारा मेवाड़ मुगलराज से जीत लिया।

भगवान श्रीचन्द्र अपने समय के उच्च कोटि के कवि तथा विद्वान थे। आप हिन्दी, संस्कृत, फारसी, अरबी भाषाओं के ज्ञाता थे। आपने श्रीनगर जाने पर अपने अनुयायियों को मात्रा शास्त्र का ज्ञान दिया। उदासीन पन्थ में मात्रा शास्त्र के वचन वेदमन्त्रों के समान पवित्र एवं महत्वपूर्ण हैं। मात्रा शास्त्र आत्मज्ञान का साहित्य है। अन्त में श्रीचन्द्र जी भगवती रावी के तट पर एकान्त साधना करने लगे। सम्वत् - १७०० वी. की बात है एक दिन प्रभात होने के पहले ही वे रावी के पार हो गए और पर्वतीय वन प्रदेश में हमेशा के लिए अन्तर्धान हो गए। तब इनकी आयु १५० वर्ष थी।

महात्मा श्रीचन्द्र जी का सम्पूर्ण जीवन ज्ञान, भक्ति और कर्म का दार्शनिक समन्वय था। उन्होंने आत्मज्ञान की ज्योति फैलायी, समाज की आन्तरिक चेतना जगायी, पृथ्वी पर सत्य, प्रेम और शान्ति का साम्राज्य स्थापित किया। भगवान श्रीचन्द्र अनुपम विभूति थे।